आयुर्वेद जगत् में जैनाचार्यों का कार्य

श्री. विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पा. शास्त्री, सोलापूर

जिस प्रकार न्याय, व्याकरण, सिद्धांत साहित्य में जैनाचार्यों की महत्त्वपूर्ण कृतियां उपलब्ध हैं, उसी प्रकार आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों में भी उनकी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। अनेक रचनाएँ अप्राप्य हैं, जो उपलब्ध हैं उनका भी समुचित समुद्धार नहीं हो सका। इसमें एक कारण यह भी हो सकता है कि वैद्यक एवं ज्योतिष विषय कभी-कभी लोगों को उपयोग में आनेवाले हैं, दैनन्दिन जीवन के उपयोगी नहीं हैं, ऐसी धारणा भी लोगों की होसकती है, परंतु यह समुचित नहीं है। स्वास्थ्य के अभाव में मनुष्यजीवन बेकार है। प्रतिकूलता के सद्भाव से सुख की उपलब्धि नहीं हो सकती। यहां पर हमें केवल आयुर्वेद के सम्बन्धी ही विचार करना है। आयुर्वेद जगत् में जैनाचार्यों ने क्या कार्य किया है? और उसकी महत्ता व आवश्यकता कितनी है? उनके प्रकाशन की कितनी आवश्यकता है इन बातों का विचार हम संक्षेप से करेंगे।

आयुर्वेद भी अंग-निर्गत है।

जिस प्रकार न्याय, दर्शन व सिद्धांतों की परंपरा में प्रामाणिकता है उसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र की परंपरा में भी प्रामाणिकता है। यह कोई कपोलकल्पित शास्त्र नहीं है, अपितु भगवान् की दिव्य ध्वनि से निर्गत अंगपूर्व शास्त्रों की परंपरा से ही श्रुति व स्मृति के रूप में इसका प्रवाह चालू है, अतः प्रामाणिक है। जैनागम में प्रामाणिकता स्वरुचि-विरचितत्व में नहीं है, अपितु सर्वज्ञ प्रतिपादित होने से है। सर्वज्ञ परमेष्ठी के मुख से जो दिव्यध्वनि निकलती है उसे श्रुतज्ञान-सागर के धारक गणधर परमेष्ठी आचारांग आदि बारह भेदों में विभक्त कर निरूपण करते हैं, उनमें से बारहवें अंग के चौदह उत्तर भेद हैं, उन चौदह पूर्व के भेदों में प्राणावाय नामक एक भेद है, इस प्राणावाय पूर्व का लक्षण करते हुए आचार्य लिखते हैं कि—

" कायचिकित्साद्यष्टांग आयुर्वेदः भूतकर्मजांगुलिप्रक्रमः
प्राणापानविभागोवि यत्र विस्तरेण वर्णितस्तत्प्राणावायम्।"

अर्थात् जिस शास्त्र में काय, तद्गत दोष, व चिकित्सादि अष्टांग आयुर्वेद का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है, पृथ्वी आदि पंचभूतों की क्रिया, जहरीले जानवर, व उनकी चिकित्साक्रम आदि एवं प्राणापान का विभाग भी जिसमें विस्तार के साथ वर्णित है उसे 'प्राणावाय पूर्व' कहते हैं, इस प्राणावाय पूर्व के आधार से ही जैनाचार्यों ने आयुर्वेद शास्त्र की रचना की है। इस विषय को कल्याणकारक के रचयिता महर्षि उग्रादित्याचार्य ने अपने ग्रंथ में स्पष्ट किया है, वह इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वार्धाधिक मागधीय विलसद्भाषाविशेषोज्वल-
प्राणावाय महागमादवितथं संगृह्य संक्षेपतः ।
उग्रादित्यगुरुर्गुरुर्गुरुर्गुणैः सद्भासि सौख्यास्पदम्
शास्त्रं संस्कृतभाषया रचितवा नित्येष भेदस्तयोः ॥ अ. २५, श्लोक ५४

इसका भाव यह है कि सर्वार्ध मागधी भाषा से सुशोभित गंभीर प्राणावाय शास्त्र से संक्षिप्त संग्रह कर संस्कृत में उग्रादित्य गुरु ने इस ग्रंथ की रचना की है, उन दोनों में संस्कृत और मागधी भाषा का भेद है, अन्य कोई भेद नहीं है। इसलिए जैनाचार्यों ने किसी भी भाषा में आयुर्वेद शास्त्र की रचना की हो उसमें प्रामाणिकता की दृष्टि में समानता है, प्रमेय की दृष्टि में भी कोई अंतर नहीं है, अंतर केवल भाषा का है। भाषा के भेद से कृति की प्रामाणिकता में कोई अंतर नहीं पडता है। अतः यह आयुर्वेद शास्त्र द्वादशांग का ही एक अंग है, अंग-निर्गत होने से सर्वतः प्रमाण है।

आयुर्वेद की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?

आयुर्वेद शास्त्र की उत्पत्ति के विषय में भी जैनाचार्यों की स्वतंत्र कल्पना है, और उसका इतिहास भी परंपरागत है। आयुर्वेद शास्त्रकार जैनाचार्यों ने सबसे पहिले अपने ग्रंथ में भगवान् वृषभदेव को नमस्कार किया है, तदनंतर लिखते हैं कि—

तं तीर्थनाथमधिगम्य विनम्य मूर्ध्ना ।
सत्प्रातिहार्यविभवादिपरीतमूर्तिम् ।
सप्रश्रयाः त्रिकरणोरुत्कृत प्रणामाः ।
प्रप्रच्छुरित्थमखिलं भरतेश्वराद्याः ॥

श्री वृषभदेव के समवशरण में भरतेश्वर आदि महा पुरुषों ने पहुंचकर विनय के साथ वंदना करते हुए प्रश्न किया कि भगवन् ! पहिले भोगभूमि के समय में मानव कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोगोपभोग सामग्रियों से सुख भोगते थे। वहां के सुख का अनुभव कर बाद स्वर्ग में पहुंच कर वहां भी खूब सुख भोगते थे, वहां से मनुष्य भव को पाकर पुण्य कर्म के बल से अपने इष्ट संपदा व स्थानों को प्राप्त करते थे। भगवन् ! अब तो कर्मभूमि की स्थिति आगई है, जो चरम शरीरी है, उपपाद जन्म के धारक है, उनको तो अब भी अपमरण नहीं है, परंतु ऐसे भी बहुत से मानव पैदा होते हैं जिनकी आयु दीर्घ नहीं होती, उनके शरीर में वात पित्त कफादि का उद्रेक होता रहता है, उनके द्वारा कभी उष्ण व शीत काल में मिथ्या आहार विहार का सेवन किया जाता है, इसलिए वे अनेक प्रकार के रोगोंसे पीडित होते हैं, और कभी कभी अपमृत्यु के भी भागी होते हैं। इसलिए हे स्वामिन् ! उनकी स्वास्थ्य रक्षा का उपाय अवश्य बतावें, आप ही शरणागतों के रक्षक हैं। इस प्रकार भरतेश्वर के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् आदि प्रभु ने अपने दिव्यध्वनि के द्वारा पुरुष का लक्षण, शरीर शरीर का भेद, दोषोत्पत्ति, चिकित्सा और कालभेद का विस्तार से वर्णन किया, एवं तदनंतर गणधरों ने भी उसकी विस्तार से व्याख्या की, उसीके आधार पर उत्तर काल के आचार्यों ने आयुर्वेद ग्रंथों की रचना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस विवेचन को लिखने का प्रयोजन यह है कि यह आयुर्वेद शास्त्र कोई लौकिक कामचलाऊ शास्त्र नहीं है। अपितु प्रमाणभूत आगम है। उसी दृष्टि से समादर पूर्वक उसका अध्ययन कर प्रयोग करना चाहिये। इस आगम से स्वपर कल्याण की साधना होती है, अतएव उपोदय है।

आयुर्वेद क्या है ?

आयुर्वेद शास्त्र को वैद्य–शास्त्र भी कहते हैं, केवल ज्ञान को विद्या कहते हैं। केवल ज्ञान से उत्पन्न शास्त्र को वैद्य शास्त्र कहते हैं, इस प्रकार वैद्य शास्त्र की निरुक्ति है।

सर्वज्ञ तीर्थंकर के द्वारा उपदिष्ट आयु संबंधी वेद को आयुर्वेद कहते हैं, इसके द्वारा मनुष्य को आयुसंबंधी समस्त विषय मालूम होते हैं, या उन विषयों को ज्ञात करने के लिए यह वेद के समान है, अतः इसे आयुर्वेद कहना सार्थक है।

आयुर्वेद का उद्देश अथवा प्रयोजन

जैनाचार्यों के जप, तप, संयमादि से बचे हुए समय को वे लोकोपकार करने के लिए उपयोग करते हैं। इसलिए लोकोपकार करने के उद्देश से ही इस शास्त्र की रचना होती है। इस आयुर्वेद शास्त्र–निर्माण के दो प्रयोजन हैं, एक तो स्वस्थ पुरुषों का स्वास्थ्य रक्षण व अस्वस्थ रोगियों का रोगमोक्षण, इस शास्त्र का उद्देश है।

स्वास्थ के विना कोई भी धर्म कार्य को भी करने में पूरा समर्थ हीं हो सकता है। चारित्र पालन, संयम ग्रहण आदि सभी स्वास्थ्यपर अवलंबित है। आयुर्वेद शास्त्रों का पारमार्थिक प्रयोजन सब से अधिक उल्लेखनीय है, आत्मचिंतन भी स्वस्थता के साथ होता है इसे भूलना नहीं चाहिये।

आयुर्वेद जगत् में जैनाचार्यों का कार्य

जैनाचार्यों ने जिस प्रकार अन्य सिद्धान्त, दर्शन शास्त्र आदि विभागों में ग्रन्थ रचना की है उसी प्रकार उनके द्वारा विरचित वैद्यक शास्त्र भी सुप्रसिद्ध है, परन्तु खेद है कि अनेक ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, हो सकता है कहीं प्राचीन ग्रन्थ भांडारों में दीमक के भक्ष्य बन रहे हो, संशोधन की आवश्यकता है। किन आचार्यों ने किन ग्रन्थों की रचना कि है इसे हम प्रकाशित वैद्यक ग्रन्थ के आधार से जान सकते हैं। अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हो जाए तो और भी अधिक प्रकाश इस सम्बन्ध में पड सकता है।

शकवर्ष ८ वें शतमान के प्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ के कर्ता उग्रादित्याचार्य का कल्याणकारक ग्रन्थ प्रकाशित हुवा है। उसके ग्रन्थ में आयुर्वेद ग्रन्थों के रचयिता पूर्वाचार्यों का उल्लेख मिलता है।

उन्होंने एक जगह लिखा है कि—

शालाक्यं पूज्यपादं प्रकटितमधिकं शल्यतन्त्रं च पात्र
स्वामिप्रोक्तं विषोग्रग्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काये या सा चिकित्सा दशरथगुरुभिर्मेघनादैः शिशूनां
वैद्यं वृष्यं च दिव्यामृतमपि कथितं सिंहनादैर्मुनींद्रैः ॥

अ. २०, श्लोक ८५

पूज्यपाद आचार्य ने शालाक्यतन्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की है, पात्र–स्वामी ने शल्यतन्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की है, प्रसिद्ध आचार्य सिद्धसेन ने विष व उग्र ग्रहों के शमन विधि का निरूपण किया है, दशरथ गुरु व मेघनाथ सूरि ने बाल रोगों की चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों का प्ररूपण किया है। सिंहनाद आचार्य ने शरीर बलवर्धक प्रयोगों का प्रतिपादन किया है, इनमें आचार्य पूज्यपाद व पात्र–स्वामीने शल्यतंत्र के संबंधी विस्तृत प्रकाश डाला प्रतीत होता है, शल्यतंत्र जो आज के युग में प्रगति को प्राप्त ऑपरेशन (Surgery) चिकित्सा है, अर्थात शस्त्रचिकित्सा है, कहीं कहीं संग्रह के रूप में वे प्रकरण उपलब्ध होते हैं, पात्रस्वामी, सिद्धसेन, मेघनाद, दशरथसूरि और सिंहनाद के ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं, अन्वेषण व अनुसंधान की आवश्यकता है।

महर्षि समंतभद्र ने भी वैद्यक विभाग में ग्रंथों की रचना की है, इस संबंध का उल्लेख कल्याणकारक में निम्न प्रकार है।

अष्टांगमप्यखिलमत्र समंतभद्रैः
प्रोक्तं सविस्तरवचो विभवैर्विशेषात्
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या
कल्याणकारकमशेषपदार्थमुक्तम् ॥ अ. २०, श्लोक ८६

आचार्य समंतभद्र ने अष्टांग आयुर्वेद नामक विस्तृत व गंभीर विवेचनात्मक ग्रंथ की रचना की है, उसीका अनुकरण कर मैंने इस कल्याण कारक को संक्षेप के साथ संपूर्ण विषयों का प्रतिपादन करते हुए लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि उग्रादित्याचार्य के समय समंतभद्र का वह ग्रंथ अवश्य विद्यमान था। काश कितने महत्व का वह ग्रंथ होगा, हम बडे अभागी हैं कि उक्त ग्रंथ का दर्शन भी नहीं कर सके।

आचार्य समंतभद्र

आचार्य समंतभद्र का समय तीसरा शतमान माना जाता है, महर्षि पूज्यपाद के पहिले समंतभद्र हुए हैं, उनकी सर्वतोमुखी विद्वत्ता का वर्णन करना शब्दशक्ति के अतीत है। उनके द्वारा निर्मित सिद्धांत, न्याय के ग्रंथ जिस प्रकार गंभीर हैं उसी प्रकार वैद्यक ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण है। उनके द्वारा 'सिद्धांत-रसायन कल्प' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की गई थी, वह ग्रंथ १८००० श्लोक परिमाण था, यद्यपि वह ग्रंथ आज समग्र उपलब्ध नहीं है तथापि यत्रतत्र उस ग्रंथ के बिखरे हुए श्लोक उपलब्ध होते हैं, जिनको भी संग्रह करने पर दो तीन हजार श्लोक सहज एकत्रित हो सकते हैं। अहिंसा प्रधान धर्म के उपासक होने से वैद्यक ग्रंथ में भी उन्होंने अहिंसात्मक प्रयोगों का ही प्रतिपादन किया है। औषधि–निर्माण में सिद्धांत असमर्थित विषयों को ग्रहण नहीं किया है, यह जैनाचार्यों के ग्रंथ की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषता रही है। इसके अलावा अपने ग्रंथ में उन्होंने जैन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग व संकेत किया है, इसलिए ग्रंथ का अर्थ करते समय जैन सिद्धांत की प्रक्रिया को ठीक तरह से समझने की अत्यंत आवश्यकता है। उदाहरण के लिए समंतभद्र के ग्रंथ में रत्नत्रयौषध का उल्लेख आता है। इसका अर्थ सामान्य वैद्य यही कर सकता है कि वज्रादि तीन रत्नों के द्वारा निर्मित औषध या भस्म। परंतु वैसा नहीं है। जैन सिद्धांत में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को रत्नत्रय के नाम से कहा है। वे जिस प्रकार मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र रूपी त्रिदोषों का नाश करते हैं, उसी प्रकार रस, गंधक व पाषाण, इन धातुत्रयों के अमृतीकरण से सिद्ध होनेवाला रसायन वात, पित्त व कफरूपी त्रिदोषों को दूर करता है। अतः इस औषध का नाम रत्नत्रयौषध है।

इसी प्रकार औषध निर्माण के प्रमाण में भी जैन मत के संकेतानुसार ही संख्याओं का निर्देश आप ने किया है। उदाहरण के लिए रससिंदूर निर्माण करने के लिए कहा गया है कि—

'सूतं केशरिगंधकं मृगनवासारद्दमम्'

इस वाक्य का अर्थ जैन सिद्धांत के ज्ञाता ही ठीक तरह से कर सकता है। जैन तीर्थंकरों के भिन्न भिन्न चिन्ह हैं, उन चिन्हों के संकेत से उस चिन्हांकित तीर्थंकरों की संख्या का यहां ग्रहण किया है। ऊपर के वाक्य में सूतं केसरि–अर्थात रस केसरी के प्रमाण में लो, अर्थात् केसरी नाम सिंह का है, सिंह चोबीसवें महावीर भगवान् का चिन्ह है। अर्थात केसरी से २४ संख्या लेनी चाहिए, गंधक मृग अर्थात हरिण जिस का चिन्ह है ऐसे सोलहवे शांतिनाथ का संकेत करता है, गंधक १६ भाग, इसी प्रकार अर्थ लेना चाहिये। समंतभद्र के ग्रंथों में इसी प्रकार के सांकेतिक अर्थ मिलेंगे, यह उनके ग्रंथ की एक विशेषता है।

उनके हर कल्पों के प्रयोग में भी जैन प्रायोगिक शब्दों का दर्शन हमें मिल सकेगा। जैन वैद्यक ग्रन्थों के पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को समझने के लिए जैनाचार्यों ने स्वतन्त्र वैद्यक कोषों की भी रचना की है। उपलब्ध कोषों में आचार्य अमृतनंदि का कोष महत्त्वपूर्ण है, परन्तु वह अपूर्ण है, शायद आयु का अवसान होने से यह कृति अधूरी रह गई हो। वनस्पतियों के नाम को भी अनेक स्थानों में हम जैन पारिभाषिक शब्दों में ही देखेंगे। इस प्रकार समंतभद्र आचार्य ने आयुर्वेद विज्ञान का भी विपुल रूप से उत्थान किया है, उनके द्वारा विरचित एक विषवैद्यक ग्रन्थ हमने बंगलोर के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् विद्वान् श्री शशिकांत जैन के पास देखा था, जो सुन्दर ताडपत्र पर अंकित था। उसके अनेक प्रयोगों को क्रियात्मक रूप में प्रयोग कर श्री जैन ने सफलता प्राप्त की है, उनके कथन के अनुसार यह अद्भुत व अभूतपूर्व ग्रन्थ है। समंतभद्र के समग्र ग्रन्थों की प्राप्ति होने पर न मालूम किस प्रकार के सफल प्रयोग सामने आवेंगे? वह दिन समाज के लिए भाग्य का होगा।

समंतभद्र के पूर्ववर्ती ग्रन्थकार

परंपरा से वैद्यग्रन्थों की निर्मिति अति प्राचीन काल से चली आ रही है, इस में कोई संदेह नहीं है। इसलिए समंतभद्र ने अपने स्थान को सूचित करते हुए भल्लातकादि में जिन मुनि समंतभद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निवास का अर्थात् भटकल के पास होन्नावर तालुका में यह गेरसप्पा स्थान है। वहां पर उनका पीठ था, इसलिए उनका निवास वहां कहा गया है। अपने ग्रन्थ में 'रसेंद्रं जैनागमसूत्रबद्धं' यह कहकर समंतभद्र ने अपने ग्रन्थ को पूर्व ग्रन्थों के सूत्रों का अनुकरण सिद्ध किया है, इससे समंतभद्र के पहिले भी जैन वैद्यक ग्रन्थों के निर्माता हुए हैं। और वे भटकल जिल्हा के होन्नावर के पास हाडुहल्ली (संस्कृत में संगीतपुर) के रहनेवाले थे, वहां पर उन्होंने अनेक वैद्यक ग्रन्थों की रचना की है। समंतभद्र को भी इसी कारण से वैद्यक ग्रन्थ निर्मिति की प्रेरणा मिली होगी।

पुष्पायुर्वेद

जैनधर्म अहिंसा प्रधान धर्म होने से महाव्रतधारी मुनियों ने इस बात का भी प्रयत्न किया कि औषध निर्माण के कार्य में किसी भी जीव का घात न हो, किसी को भी पीडा नहीं पहुंचनी चाहिये, एकेंद्रिय प्राणियों का भी बुद्धिपुरस्सर घात न हो इस का भी ध्यान रखा गया है। अतः पुष्पायुर्वेद ग्रन्थ का निर्माण किया गया।

आयुर्वेद ग्रंथकारोंने जिस प्रकार वनस्पतियों को अपने ग्रंथों में स्थान दिया उसी प्रकार पुष्पायुर्वेद में केवल परागरहित पुष्पों को स्थान मिला है। पुष्पायुर्वेद में १८ हजार जाति के केवल पुष्पों के उपयोग से ही औषधि निर्माण की प्रक्रिया बताई गई है, यह पुष्पायुर्वेद इस्वी सन् पूर्व ३ रें शतक की रचना है, प्राचीन कन्नड लिपी है जो बडी कठिनता से बांचने में आती है। इतिहास संशोधकों के लिए यह जैसी अनूठी चीज है, उसी प्रकार आयुर्वेद जगत् के लिए अपूर्व वस्तु है। इस दिशा में जैनाचार्यों के सिवाय किसीने भी कार्य नहीं किया है, यह आज हम निस्संदिग्ध रूप में कह सकते हैं।

समंतभद्र गेरसप्पा में रहते थे, आज भी वह ज्वालामालिनी देवी का प्रसिद्ध सातिशय स्थान है, विशालचतुर्मुख मंदिर है, जंगल में यत्र तत्र मूर्तियां बिखरी पडी हैं। दर्शनीय स्थान है, दंतकथा के आधार पर इस स्थान में एक रसकूप है जो कि सिद्धरस का है। कलियुग में धर्मसंकट उपस्थित होने पर इस रसकूप का उपयोग हो सकता है, ऐसा कहा गया है। उस रसकूप के स्थान को देखने के लिए सिद्ध सर्वांजन का प्रयोग करना चाहिए, उस सर्वांजन के निर्माण की विधि पुष्पायुर्वेद में है। इस अंजन में प्रमुख पुष्प उस प्रांत के जंगल में प्राप्त होते हैं यह भी कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि महर्षि समंतभद्र के पहिले भी आयुर्वेद के निर्माता अनेक ग्रंथकार हुए हैं। परंतु आज उनकी कृतियों का अन्वेषण व अनुसंधान करने की महती आवश्यकता है। संशोधन, अन्वेषण व अनुसंधान विभाग का निर्माण कर कई विद्वानों से इस कार्य को कराने की आवश्यकता है।

महर्षि पूज्यपाद

आचार्य समंतभद्र के बाद इस विषय में कदम बढानेवाले महर्षि पूज्यपाद का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। अनंतर के महर्षियों ने भी पूज्यपाद का नाम बडी पूज्यता के साथ लिया है। इस दिशा में पूज्यपाद के कार्य भी उल्लेखनीय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महर्षि पूज्यपाद भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने व्याकरण शास्त्र की रचना की है, सिद्धांत ग्रंथ की वृत्ति लिखी है। उसी प्रकार आयुर्वेद विषय में भी उनका प्रभुत्व था। उत्तर ग्रंथकारों ने पूज्यपाद की कृतियों का उल्लेख कर उनकी बडी प्रशंसा की है। आचार्य शुभचंद्र ने पूज्यपाद की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जिनके वचन या ग्रंथ मन, वचन व काय के कलंक को दूर करते हैं उस पूज्यपाद को हम नमस्कार करते हैं। मन, वचन, काय के कलंक को दूर करने के अभिप्राय को कन्नड कवि पार्श्व पंडित ने अपने ग्रंथ में स्पष्ट किया है।

"सकलोर्वी नुत पूज्यपाद मुनिपं तां पेळ्द् कल्याणद्वाकारक दिं देहद दोषमं वितन वाचा दोषमं शब्दसाधक जैनेंद्रदिती जगज्जनद-मिथ्या-दोषमं तत्त्वबोधक तत्त्वार्थदवृत्तियिंदे कलेदं कारूण्य दुग्धार्णवम् ॥"

सर्व लोक के द्वारा पूज्य श्री पूज्यपाद ने कल्याणकारक वैद्यक ग्रंथ से देह के विकार को, वचन के दोष को जैनेंद्र व्याकरण से, एवं चित्त के मिथ्यात्व दोष को तत्त्वबोधक तत्त्वार्थ की वृत्ति सर्वार्थसिद्धि से दूर किया। इस प्रकार पूज्यपाद के द्वारा भी कल्याणकारक नामक वैद्यक ग्रंथ का उल्लेख मिलता है। परंतु समग्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता है, त्रोटक प्रकरण कहीं कहीं उपलब्ध होते हैं।

संपूर्ण ग्रंथ की उपलब्धि न होने पर भी यह निस्संदेह कह सकते हैं कि पूज्यपाद का आयुर्वेद शास्त्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण व प्रामाणिक था। क्यों कि उत्तर काल के अनेक वैद्यक ग्रंथकारों ने पूज्यपाद के ग्रंथ का आश्रय लेकर अपने ग्रंथ की रचना की। कन्नड, तेलगू, तामिल आदि विभिन्न भाषा के ग्रंथकारों ने भी पूज्यपाद की कृति को आधार बनाकर 'श्रीपूज्यपादोदितं,' 'पूज्यपादने भाषितं' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। पूज्यपाद के द्वारा प्रतिपादित प्रयोग नितरां प्रामाणिक है, ऐसा उस समय माना जाता होगा। इसलिए वे पूज्यपाद का नाम लेने में अपना गौरव समझते होंगे।

पूज्यपाद के द्वारा रचित ग्रंथ के कुछ भाग जो उपलब्ध होते हैं, उनका भी संग्रह किया जावे तो कई हजार श्लोक प्रमाण संग्रहित हो सकते हैं। इसके लिए अनेक भाषाओं में प्रकाशित वैद्यक ग्रंथ एवं अप्रकाशित कुछ संग्रहों के अवलोकन की आवश्यकता है।

पूज्यपाद ने कल्याणकारक व शालाक्य तन्त्र के अलावा वैद्यामृतं नामक वैद्यक ग्रंथ का भी निर्माण किया था, शायद यह ग्रंथ कन्नड भाषा में होगा। पूज्यपाद के उत्तरकालवर्ती गोम्मटदेव मुनि ने उक्त वैद्यामृत का उल्लेख अपने ग्रंथ में किया है। इसलिए पूज्यपादाचार्य की कृतियों की प्रतियां अनेक भाषाओं में होंगी, इसमें भी कोई शंका नहीं है।

इस दृष्टि से आयुर्वेद जगत् में पूज्यपाद आचार्य ने भी बहुत बडा योगदान दिया है। वे इस विभाग के चमकते हुए सूर्य सिद्ध हुए हैं। उनकी उपकृति के लिए जैन समाज चिरऋणी रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपाद के बाद के वैद्यक ग्रंथकार

पूज्यपाद के बाद गोम्मटदेव मुनि नामक ग्रंथकर्ता हुए हैं। इन्होंने आयुर्वेद विषयक मेरुतन्त्र नामक ग्रन्थ की रचना की है। अपने ग्रंथ में उन्होंने प्रत्येक परिच्छेद के अंत में आचार्य पूज्ययाद का आदर के साथ स्मरण किया है।

सिद्ध नागार्जुन

कहा जाता है कि यह पूज्यपाद के भानजे थे। इन्होंने नागार्जुन कल्प, नागार्जुन कक्षपुट आदि वैद्यक ग्रंथों का निर्माण किया था। इसके अलावा इन्होंने 'वज्रखेचर घुटिका' नाम की सुवर्ण बनाने की मणि तयार की थी। यह मणि अनर्घ्य व बहुमूल्य साध्य थी, इसलिए इस मणि की सिद्धि के लिए राजासे सहायता की अपेक्षा की। राजाने पूछा कि सिद्ध न होने पर क्या होगा? तब नागार्जुन ने धैर्य के साथ कहा कि यदि मणि सिद्ध नहीं हुई तो मेरी दोनों आखों को निकलवा दीजियेगा, राजाने मंजूर कर विपुल धनराशि इसके लिए दी और कई महिनों की अवधी दी। करीब बारह महिनों बाद यह रत्न सिद्ध हुआ। गुटिका के रूपमें स्थित उस मणिपर नागार्जुन ने अपने नामकी मुद्रा लगाई और उन मणियों को नदी के पानी से धो रहे थे कि हाथ से फिसलकर नदी में तीनों मणियां गिरी, मछलीने निगलली, वह मछली एक वेश्या के हाथ पडी, चीरने पर ये तीनों रत्न मिले। हर्षित होकर वह वेश्या अपने दिवानखाने के झूलेपर ले जाकर उन रत्नों को रखा तो झूलेकी लोह शृंखला सुवर्ण की बन गई। इधर राजा ने प्रतिज्ञा के अनुसार नागार्जुन की आंखें निकलवाई। नागार्जुन अंधे होकर अब देशांतर चले गये। उधर वेश्या ने रोज लोहे को सोना बनाना प्रारंभ किया। पर्वतप्राय सुवर्ण से वह क्या करती? अनेकों अन्नछत्रादिकों को निर्माण कर करोडों मुद्राओंका व्यय किया, रत्नों पर नागार्जुनका नाम देखकर, उन अन्नसत्रों का नाम भी नागार्जुन अन्नसत्र रखा गया। नागार्जुन विहार करते करते जब वहां आये तो उन्हों ने नागार्जुन अन्नसत्र को सुनकर इस नाम का कारण क्या है यह पूछा। सारी बातें वेश्या से मालुम होगई। पुनश्च उन रत्नों को वेश्या से प्राप्त किया, उसीके प्रभाव से गई हुई नेत्रों को पुनः प्राप्त किया। राजसभा में पहुंचकर उन मणियों के चमत्कार को पुनः बताया।

यह सब लिखने का प्रयोजन यह है कि आयुर्वेद के प्रयोगों में अपरिमित महत्त्व है। उसके लिए सतत अध्यवसाय की आवश्यकता है।

उग्रादित्याचार्य

पूज्यपाद के अनन्तर आयुर्वेद ग्रंथकार जो हुए हैं उनमें श्री महर्षि उग्रादित्याचार्य का नाम बहुत आदर के साथ लिया जा सकता है। उन्होंने कल्याणकारक नामक महत्त्वपूर्ण वैद्यक ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ करीब ५००० श्लोक प्रमाण से युक्त है। जैनाचार्य परम्परा के अनुसार ही इसमें भी किसी भी औषध प्रयोग में मद्य, मांस, मधु का प्रयोग नहीं किया गया है। इस ग्रंथ मं पच्चीस परिच्छेद हैं। पच्चीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिच्छेदों में विभक्त ग्रंथ में विभिन्न रोग, प्राप्ति, निदान, पूर्वरूप, चिकित्सा आदि का सुन्दर क्रम से वर्णन किया गया है। हजारों रोगों की चिकित्सा का प्रतिपादन इस ग्रन्थ में है। भिन्न भिन्न अधिकारों का विभाग कर विषयवर्णन किया गया है ८ वें शतमान के माने हुए आयुर्वेद के उग्रादित्याचार्य के द्वारा निर्मित इस ग्रंथ की जैनेतर विद्वानों ने भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। वैद्यपंचानन पं. गुणे शास्त्री ने रस ग्रंथ पर विस्तृत प्रस्तावना लिखकर इस ग्रंथ का परमादर किया है।

आयुर्वेद संबंधी विषयों से परिपुष्ट महत्त्वपूर्ण कृति जो उपलब्ध हुई है वह कल्याणकारक है, जैनाचार्य उग्रादित्य के द्वारा विरचित है, जो राष्ट्रकूट राज्य के राजा अमोघवर्ष प्रथम और चालुक्य नरेश कलिविष्णुवर्धन पंचम के समकालीन थे। ग्रंथ का प्रारंभ आयुर्वेद तत्त्व के प्रतिपादन के साथ हुआ है, जो दो विभागों से विभक्त है, एक रोगप्रतिकार–दूसरा चिकित्सा प्रयोग। अंत के परिशिष्ट में एक लंबा परिसंवाद संस्कृत गद्य में दिया गया है जिसमें मांसाशन वगैरे की निस्सारता व अनावश्यकता को बताया गया है। यह भी कहा गया है कि यह परिसंवाद ग्रंथकार के द्वारा राजा अमोघवर्ष के दरबार में सेकडों विद्वान व वैद्यों की उपस्थिति में सिद्ध किया गया था।

इतना लिखने के बाद उग्रादित्याचार्य के विषय में या उनके ग्रंथ के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता है ऐसा हमें प्रतीत नहीं होता, उनके द्वारा विरचित ग्रंथ से ही विशेष प्रकाश पड सकता है।

इसी प्रकार मल्लिषेण सूरि ने अपने विद्यानुशासन आदि मंत्र शास्त्रों में भी आयुर्वेद चिकित्सा का निरूपण किया है। मंत्र शास्त्र और आयुर्वेद शास्त्र का बहुत निकट संबंध था। इसलिए भैरव पद्मावती कल्प, ज्वालामालिनी कल्प आदि मंत्र शास्त्रों में भी यत्र तत्र आयुर्वेद के प्रयोगों का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद विद्वान् को अपने शास्त्र में प्रवीण होने के लिए मंत्र, तंत्र, शकुन, निमित्त आदि शास्त्रों का भी अध्ययन करना चाहिये, रोगीयों की रोग परीक्षा के लिए सर्व दृष्टि से प्राप्त ज्ञान सफल सहायक हो सकता है, इसे नहीं भूलना चाहिये, अतः पूर्वाचार्यों ने आयुर्वेद के साथ अन्य ग्रंथ में का भी अध्ययन मनन किया है।

महर्षि उग्रादित्याचार्य ने सुश्रुताचार्य को स्याद्वादी के नाम से उल्लेख किया है, सुश्रुत ग्रंथ में जो चिकित्सा क्रम बताया गया है उसमें प्रायः सभी प्रयोग जैन प्रक्रिया से मिलते जुलते हैं, इसलिए उन्हें ग्रंथकार ने स्याद्वादी के नाम से उल्लेख किया हों, या यह भी हो सकता है कि सुश्रुताचार्य जैनाचार्य हों, पूज्यपाद के शल्यतंत्र का अनुकरण कर उन्हों ने ग्रंथरचना की हो, यह सब सूक्ष्म अनुसंधान करने पर ज्ञात हो सकते हैं। तथापि यह निस्संदिग्ध कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों का इस शास्त्र पर अद्वितीय अधिकार था एवं उनकी कृतियों का इस जगत् के अन्य ग्रंथ निर्माताओं के ग्रंथों में भी अमिट प्रभाव था। उस प्रभाव से ये ग्रंथकार अपने को बचा नहीं सकते थे।

कन्नड भाषा के जैन वैद्यक ग्रंथकर्ता

जिस प्रकार संस्कृत में वैद्यक ग्रन्थों की रचना अपने बहुमूल्य समय को निकालकर जैनाचार्यों ने की है उसी प्रकार अन्यान्य भाषाओं में भी वैद्यक ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। तेलगू और तामिल भाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में भी जैन वैद्यक ग्रन्थों की रचना हुई है। केरळ की मलेयाली भाषा में भी वहां के विद्वानों ने वैद्यक ग्रन्थों की रचना की है। मलेयाल में आयुर्वेद के रस, रसायन, तैलादि का बहुत प्रचार है, तैलाभ्यंग की प्रक्रिया से कायाकल्प का प्रयोग आज के विद्वान भी वहां पर करते हैं, यह भुलाना नहीं चाहिये। वैद्यक और ज्योतिष दोनों विद्याओं का संगोपन मलेयाल में बहुत सावधानी के साथ किया गया है। इसके अलावा कन्नड ग्रन्थकारों ने भी वैद्यक और ज्योतिष सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है उनमें कई स्वतंत्र ग्रन्थ एवं कई तो संस्कृत ग्रन्थों के टीकात्मक ग्रन्थ हैं। उनका भी समुचित संशोधन, समुद्धार नहीं हो सका है। इस ओर समाज के चिंतकों को ध्यान देना चाहिये।

पूज्यपाद का कल्याणकारक कन्नड में

जगद्दल सोमनाथ कवि ने पूज्यपादाचार्य विरचित कल्याणकारक ग्रन्थ का कर्नाटक भाषा में भाषांतर किया है। यह ग्रन्थ भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ पीठिका प्रकरण, परिभाषा प्रकरण, षोडशज्वर निरूपण आदि अष्टांगों से युक्त है, यह ग्रन्थ कन्नड भाषा के उपलब्ध वैद्यक ग्रन्थों में सब से प्राचीन है। इस ग्रन्थ में सोमनाथ कवि ने पूज्यपाद का बहुत आदर के साथ उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है।

सुकरं तानेने पूज्यपाद मुनिगल मुंपेलद कल्याणका
रंकमवाहट सिद्धसार चरका सुत्कृष्टमं सद्गुणा
धिकमं वर्जित मद्य मांस मधुवं कर्णाटदिं लोकर
क्षकमा चित्र मदागे चित्र कवि सोमं पेल्द निंतल्तिर्यिं ॥

यह काव्य भी सुन्दर है, प्रत्येक चरण के द्वितीयाक्षर में ककार को साधा गया है। ग्रंथकार ने स्पष्ट किया है कि आचार्य पूज्यपाद ने पहिले जो कल्याणकारक की रचना की है, जो वाग्भट, चरक आदि आयुर्वेद ग्रंथों से उत्कृष्ट है, जिस में मद्य, मांस और मधु का प्रयोग वर्जित किया है, ऐसे लोकरक्षक, उत्तम ग्रंथ को मैंने कर्नाटक भाषा के विविध छन्दों में अत्यंत प्रेम के साथ निर्माण किया है, यह उपर्युक्त श्लोक का भाव है, इससे स्पष्ट है वाग्भट चरकादि ग्रंथ भी कवि सोमनाथ के समय विद्यमान थे।

इसी प्रकार कीर्तिवर्म ने गोवैद्य, मंगराज ने खगेंद्रमणिदर्पण नामक विष वैद्य, अभिनव चन्द्र ने हयशास्त्र नामक हयवैद्य (अश्वपरीक्षा व चिकित्सा), देवेंद्रमुनि ने बालग्रह चिकित्सा, अमृतनन्दि ने वैद्यक निघंटु आदि ग्रंथों की रचना कर इस विभाग की अपूर्व सेवा की है। इसी प्रकार जगदेव महामंत्रवादि श्रीधरदेव ने २४ अधिकारों से युक्त वैद्यामृत ग्रंथ की रचना की है। साथ ही साळ्व कवि के द्वारा विरचित रसरत्नाकर और वैद्य सांगत्य ग्रंथ भी कम महत्त्व के नहीं हैं। इस प्रकार कन्नड के प्रथितयश महाकवियों ने वैद्यक विषय में भी अपनी अमूल्य सेवा प्रदान की है।

जैन वैद्यक ग्रन्थों में अहिंसा प्रधान दृष्टि रखी गई है, यह हम पहिले कह आये हैं। खाओ, पिओ, मजा करो इस दृष्टि से ही जैनाचार्यों ने काम नहीं लिया है, अपने शरीर के स्वास्थ्य के लिए अन्य असंख्य जीवों की हत्या करना मानवता नहीं हो सकती है, 'आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स मानवः,' यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्या आज भी करने की आवश्यकता है। आहार की न्यूनता के नाम से सजीव प्राणियों का उत्पीडन मानव व्यवहार नहीं हो सकता है, एक अहिंसा धर्मप्रेमी, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो, इस बात को कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि एक व्यक्ति की सहुलियत के लिए अनेक जीवों का संहार किया जाय। आज तो मांसाहार प्रधान पाश्चात्य देशों में भी अनेक सुसमंजस सुबुद्ध विद्वान् मांस की निरुपयोगिता को सिद्ध कर रहे हैं।

आयुर्विज्ञान–महार्णव, आयुर्वेदकलाभूषण श्री शेष शास्त्री ने आयुर्वेद सम्मेलन के एक भाषण में सिद्ध किया था कि मद्यमांसादिक का उपयोग औषध प्रयोग में करना उचित नहीं है। और ये गलिच्छ पदार्थ भारतीयों के शरीर के लिए कदापि हितावह नहीं हैं।

काशी हिंदु विश्वविद्यालय के आयुर्वेद समारंभोत्सव के प्रसंग में महामहोपाध्याय, विद्यानिधि कविराज श्री गणनाथ सेन एम्. ए. ने इन मद्यमांसादिक के प्रयोग का तर्कशुद्ध पद्धति से निषेध किया था।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कानपुर के अधिवेशन में कविराज श्री योगींद्रनाथ सेन एम्. ए. ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि अंग्रेजी औषध प्रायः मद्यमांसादिक से मिश्रित होते हैं अतः वे भारतीयों की प्रकृति के लिए अनुकूल नहीं हो सकते।

वनस्पतियों में अचिंत्य शक्ति है, इसे भारतीय आयुर्वेद ग्रंथकारों ने प्रयोगों से सिद्ध किया है। भारतीय वनस्पति ही भारतीयों के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त हो सकती है।

क्या आचार्य समंतभद्र का भस्मक रोग आयुर्वेद औषधों से दूर नहीं हुआ? महर्षि पूज्यपाद व नागार्जुन को गगन–गमन–सामर्थ्य व गत नेत्रों की प्राप्ति आयुर्वेद औषधों से नहीं हुई? लोक में कठिन से कठिन माने जानेवाले रोगों की चिकित्सा आयुर्वेद पद्धति से हो सकती है तो उसके प्रयोगों में निंद्य व गर्ह्य ऐसे मांसादिक का प्रयोग कर अहिंसा धर्म का गला क्यों घोटा जाता है? सर्व प्राणिहित करने का श्रेय वैद्य विद्वानों को मिल सकता है, इस दृष्टि से जैन आयुर्वेद ग्रंथकारों ने अपने सामने विश्वकल्याण का ध्येय रखा है। औषधिप्रयोग में भी किसी भी जीव को पीडा न पहुंचे यह उनकी भावना कितनी बडी उदारता की द्योति का है यह हमारे वाचक विचार करें।

विश्ववंद्य चारित्र चक्रवर्ति आचार्य शांतिसागर महाराज का जन्म शताब्द वर्ष मनाया जा रहा है। आचार्य श्री ने अपने पावन जीवन में लोककल्याण का कार्य किया है। वैद्य यदि व्यवहार स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं तो आचार्य श्री ने पारमार्थिक स्वास्थ्य की रक्षा की है। व्यावहारिक स्वास्थ्य अस्थायी है, नश्वर है, विकृतिसंभव है, परंतु पारमार्थिक स्वास्थ्य स्थायी है, नित्य है, अविकृत व प्रकृतिदत्त है। जैन महर्षि उस पारमार्थिक स्वास्थ का ही उपदेश देते हैं। उसका लक्षण करते हुए आचार्य देव कहते हैं कि—

अशेषकर्मक्षयजं महाद्भुतं यदेतदात्यंतिकमद्वितीयम्।
अतींद्रियं प्रार्थितमर्थवेदिभिः तदेतदुक्तं परमार्थनामकम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा के सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से उत्पन्न, अत्यद्भुत, आत्यंतिक व परमश्रेष्ठ, विद्वानों के द्वारा सदा अपेक्षित जो अतींद्रिय परमानंद है वही पारमार्थिक स्वास्थ्य है।

उस पारमार्थिक स्वास्थ्य को एवं उसके लिए परंपरा साधनभूत लौकिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने का उपाय आयुर्वेद ग्रंथकारों ने, उसमें भी निर्दोष पद्धति को जैनायुर्वेद ग्रंथकारों ने प्रतिपादन किया है। व्यावहारिक स्वास्थ्य व पारमार्थिक स्वास्थ्य दोनों ही इस जीव को आवश्यक है।

इस दृष्टि से आचार्य कुंदकुंद से लेकर आचार्य शांतिसागर तक के महर्षियों ने संसार के जीवों को स्वास्थ्य रक्षण का उपाय बताते हुए महान उपकार किया है। इस दिशा में अनेक अनुपम कृतियों को निर्माण कर आज के अध्ययन प्रेमियों को चिरऋणी बनाया है। परंतु आज उन ग्रंथोंको अध्ययन करनेवाले, दुर्लभ होगये हैं तो प्रयोग करनेवालों का तो अभाव ही है। इसलिए निकट भविष्यमें भगवान् महावीर का २५०० वा निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए जैन समाज जा रहा है, उसमें मुख्यतः जैनायुर्वेद व जैन ज्योतिष ग्रंथों का प्रकाशन कर जिनवाणी की यथार्थ सेवा करें। हमारी उपेक्षा यदि इसी प्रकार रही तो रही सही ज्ञान भंडार भी लुप्त हो जायगा, उनके अनेक रत्नों के दर्शन से हम वंचित हो जावेंगे। पीछे की पीढी के हाथ में पश्चात्ताप के सिवाय कुछ नहीं आवेगा। साथ में उन प्राचीन महर्षियों के अनर्घ्य व महत्त्वपूर्ण कार्य देखते देखते नष्ट हो जावेंगे जिसका उत्तरदायित्व हमपर रहेगा। इस अपराध के लिए कहीं भी क्षमा नहीं हो सकेगी।

इत्यलं विस्तरेण। आयुर्वेदो विजयतेतराम्। भद्रं भूयात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org